श्री राम-सीता-लक्ष्मण का वन गमन और नगर निवासियों को सोए छोड़कर आगे बढ़ना

चौपाई :

*** निकसि बसिष्ठ द्वार भए ठाढ़े। देखे लोग बिरह दव दाढ़े॥ कहि प्रिय बचन सकल समुझाए। बिप्र बृंद रघुबीर बोलाए॥1॥

भावार्थ:

राजमहल से निकलकर श्री रामचन्द्रजी वशिष्ठजी के दरवाजे पर जा खड़े हुए और देखा कि सब लोग विरह की अग्नि में जल रहे हैं। उन्होंने प्रिय वचन कहकर सबको समझाया, फिर श्री रामचन्द्रजी ने ब्राह्मणों की मंडली को बुलाया॥1॥

*** गुर सन कहि बरषासन दीन्हे। आदर दान बिनय बस कीन्हे॥ जाचक दान मान संतोषे। मीत पुनीत प्रेम परितोषे॥2॥

भावार्थ:

गुरुजी से कहकर उन सबको वर्षाशन (वर्षभर का भोजन) दिए और आदर, दान तथा विनय से उन्हें वश में कर लिया। फिर याचकों को दान और मान देकर संतुष्ट किया तथा मित्रों को पवित्र प्रेम से प्रसन्न किया॥2॥

*** दासीं दास बोलाइ बहोरी। गुरहि सौंपि बोले कर जोरी॥ सब कै सार सँभार गोसाईं। करबि जनक जननी की नाईं॥3॥

भावार्थ:

फिर दास-दासियों को बुलाकर उन्हें गुरुजी को सौंपकर, हाथ जोड़कर बोले- हे गुसाईं! इन सबकी माता-पिता के समान सार-संभार (देख-रेख) करते रहिएगा॥3॥

*** बारहिं बार जोरि जुग पानी। कहत रामु सब सन मृदु बानी॥ सोइ सब भाँति मोर हितकारी। जेहि तें रहै भुआल सुखारी॥4॥

भावार्थ:

श्री रामचन्द्रजी बार-बार दोनों हाथ जोड़कर सबसे कोमल वाणी कहते हैं कि मेरा सब प्रकार से हितकारी मित्र वही होगा, जिसकी चेष्टा से महाराज सुखी रहें॥4॥

दोहा :

*** मातु सकल मोरे बिरहँ जेहिं न होहिं दुख दीन। सोइ उपाउ तुम्ह करेहु सब पुर जन परम प्रबीन॥80॥

भावार्थ:

हे परम चतुर पुरवासी सज्जनों! आप लोग सब वही उपाए कीजिएगा, जिससे मेरी सब माताएँ मेरे

विरह के दुःख से दुःखी न हों॥80॥

चौपाई :

*** एहि बिधि राम सबहि समुझावा। गुर पद पदुम हरषि सिरु नावा॥ गनपति गौरि गिरीसु मनाई। चले असीस पाइ रघुराई॥1॥

भावार्थ:

इस प्रकार श्री रामजी ने सबको समझाया और हर्षित होकर गुरुजी के चरणकमलों में सिर नवाया। फिर गणेशजी, पार्वतीजी और कैलासपति महादेवजी को मनाकर तथा आशीर्वाद पाकर श्री रघुनाथजी चले॥1॥

*** राम चलत अति भयउ बिषादू। सुनि न जाइ पुर आरत नादू॥ कुसगुन लंक अवध अति सोकू। हरष बिषाद बिबस सुरलोकू॥2॥

भावार्थ:

श्री रामजी के चलते ही बड़ा भारी विषाद हो गया। नगर का आर्तनाद (हाहाकर) सुना नहीं जाता। लंका में बुरे शकुन होने लगे, अयोध्या में अत्यन्त शोक छा गया और देवलोक में सब हर्ष और विषाद दोनों के वश में गए। (हर्ष इस बात का था कि अब राक्षसों का नाश होगा और विषाद अयोध्यावासियों के शोक के कारण था)॥2॥

*** गइ मुरुछा तब भूपति जागे। बोलि सुमंत्रु कहन अस लागे॥ रामु चले बन प्रान न जाहीं। केहि सुख लागि रहत तन माहीं॥3॥

भावार्थ:

मूर्छा दूर हुई, तब राजा जागे और सुमंत्र को बुलाकर ऐसा कहने लगे- श्री राम वन को चले गए, पर मेरे प्राण नहीं जा रहे हैं। न जाने ये किस सुख के लिए शरीर में टिक रहे हैं॥3॥

*** एहि तें कवन ब्यथा बलवाना। जो दुखु पाइ तजहिं तनु प्राना॥ पुनि धरि धीर कहइ नरनाहू। लै रथु संग सखा तुम्ह जाहू॥4॥

भावार्थ:

इससे अधिक बलवती और कौन सी व्यथा होगी, जिस दुःख को पाकर प्राण शरीर को छोड़ेंगे। फिर धीरज धरकर राजा ने कहा- हे सखा! तुम रथ लेकर श्री राम के साथ जाओ॥4॥

दोहा :

*** सुठि सुकुमार कुमार दोउ जनकसुता सुकुमारि। रथ चढ़ाइ देखराइ बनु फिरेहु गएँ दिन चारि॥81॥

भावार्थ:

अत्यन्त सुकुमार दोनों कुमारों को और सुकुमारी जानकी को रथ में चढ़ाकर, वन दिखलाकर चार दिन के बाद लौट आना॥81॥

चौपाई :

*** जौं नहिं फिरहिं धीर दोउ भाई। सत्यसंध दृढ़ब्रत रघुराई॥ तौ तुम्ह बिनय करेहु कर जोरी। फेरिअ प्रभु मिथिलेसकिसोरी॥1॥॥

भावार्थ:

यदि धैर्यवान दोनों भाई न लौटें- क्योंकि श्री रघुनाथजी प्रण के सच्चे और दृढ़ता से नियम का पालन करने वाले हैं- तो तुम हाथ जोड़कर विनती करना कि हे प्रभो! जनककुमारी सीताजी को तो लौटा दीजिए॥1॥

*** जब सिय कानन देखि डेराई। कहेहु मोरि सिख अवसरु पाई॥ सासु ससुर अस कहेउ सँदेसू। पुत्रि फिरिअ बन बहुत कलेसू॥2॥

भावार्थ:

जब सीता वन को देखकर डरें, तब मौका पाकर मेरी यह सीख उनसे कहना कि तुम्हारे सास और ससुर ने ऐसा संदेश कहा है कि हे पुत्री! तुम लौट चलो, वन में बहुत क्लेश हैं॥2॥

*** पितुगृह कबहुँ कबहुँ ससुरारी। रहेहु जहाँ रुचि होइ तुम्हारी॥ एहि बिधि करेहु उपाय कदंबा। फिरइ त होइ प्रान अवलंबा॥3॥

भावार्थ:

कभी पिता के घर, कभी ससुराल, जहाँ तुम्हारी इच्छा हो, वहीं रहना। इस प्रकार तुम बहुत से उपाय करना। यदि सीताजी लौट आईं तो मेरे प्राणों को सहारा हो जाएगा॥3॥

*** नाहिं त मोर मरनु परिनामा। कछु न बसाइ भएँ बिधि बामा॥ अस कहि मुरुछि परा महि राऊ। रामु लखनु सिय आनि देखाऊ॥4॥

भावार्थ:

(नहीं तो अंत में मेरा मरण ही होगा। विधाता के विपरीत होने पर कुछ वश नहीं चलता। हा! राम, लक्ष्मण और सीता को लाकर दिखाओ। ऐसा कहकर राजा मूर्छित होकर पृथ्वी पर गिर पड़े॥4॥

दोहा :

*** पाइ रजायसु नाइ सिरु रथु अति बेग बनाइ। गयउ जहाँ बाहेर नगर सीय सहित दोउ भाइ॥82॥

भावार्थ:

सुमंत्रजी राजा की आज्ञा पाकर, सिर नवाकर और बहुत जल्दी रथ जुड़वाकर वहाँ गए जहाँ नगर के बाहर सीताजी सहित दोनों भाई थे॥82॥

चौपाई :

*** तब सुमंत्र नृप बचन सुनाए। करि बिनती रथ रामु चढ़ाए॥ चढ़ि रथ सीय सहित दोउ भाई। चले हृदयँ अवधहि सिरु नाई॥1॥

भावार्थ:

तब (वहाँ पहुँचकर) सुमंत्र ने राजा के वचन श्री रामचन्द्रजी को सुनाए और विनती करके उनको

रथ पर चढ़ाया। सीताजी सहित दोनों भाई रथ पर चढ़कर हृदय में अयोध्या को सिर नवाकर चले॥1॥

*** चलत रामु लखि अवध अनाथा। बिकल लोग सब लागे साथा॥ कृपासिंधु बहु बिधि समुझावहिं। फिरहिं प्रेम बस पुनि फिरि आवहिं॥2॥

भावार्थ:

श्री रामचन्द्रजी को जाते हुए और अयोध्या को अनाथ (होते हुए) देखकर सब लोग व्याकुल होकर उनके साथ हो लिए। कृपा के समुद्र श्री रामजी उन्हें बहुत तरहसे समझाते हैं, तो वे (अयोध्या की ओर) लौट जाते हैं, परन्तु प्रेमवश फिर लौट आते हैं॥2॥

*** लागति अवध भयावनि भारी। मानहुँ कालराति अँधिआरी॥ घोर जंतु सम पुर नर नारी। डरपहिं एकहि एक निहारी॥3॥

भावार्थ:

अयोध्यापुरी बड़ी डरावनी लग रही है, मानो अंधकारमयी कालरात्रि ही हो। नगर के नर-नारी भयानक जन्तुओं के समान एक-दूसरे को देखकर डर रहे हैं॥3॥

*** घर मसान परिजन जनु भूता। सुत हित मीत मनहुँ जमदूता॥ बागन्ह बिटप बेलि कुम्हिलाहीं। सरित सरोवर देखि न जाहीं॥4॥

भावार्थ:

घर श्मशान, कुटुम्बी भूत-प्रेत और पुत्र, हितैषी और मित्र मानो यमराज के दूत हैं। बगीचों में वृक्ष और बेलें कुम्हला रही हैं। नदी और तालाब ऐसे भयानक लगते हैं कि उनकी ओर देखा भी नहीं जाता॥4॥

दोहा :

*** हय गय कोटिन्ह केलिमृग पुरपसु चातक मोर। पिक रथांग सुक सारिका सारस हंस चकोर॥83॥

भावार्थ:

करोड़ों घोड़े, हाथी, खेलने के लिए पाले हुए हिरन, नगर के (गाय, बैल, बकरी आदि) पशु, पपीहे, मोर, कोयल, चकवे, तोते, मैना, सारस, हंस और चकोर-॥83॥

चौपाई :

*** राम बियोग बिकल सब ठाढ़े। जहँ तहँ मनहुँ चित्र लिखि काढ़े॥ नगरु सफल बनु गहबर भारी। खग मृग बिपुल सकल नर नारी॥1॥

भावार्थ:

श्री रामजी के वियोग में सभी व्याकुल हुए जहाँ-तहाँ (ऐसे चुपचाप स्थिर होकर) खड़े हैं, मानो तसवीरों में लिखकर बनाए हुए हैं। नगर मानो फलों से परिपूर्णबड़ा भारी सघन वन था। नगर निवासी सब स्त्री-पुरुष बहुत से पशुपक्षी थे। (अर्थात अवधपुरी अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष चारों फलों

को देने वाली नगरी थी और सब स्त्री-पुरुष सुख से उन फलों को प्राप्त करते थे।)॥1॥

*** बिधि कैकई किरातिनि कीन्ही। जेहिं दव दुसह दसहुँ दिसि दीन्ही॥ सहि न सके रघुबर बिरहागी। चले लोग सब ब्याकुल भागी॥2॥

भावार्थ:

विधाता ने कैकेयी को भीलनी बनाया, जिसने दसों दिशाओं में दुःसह दावाग्नि (भयानक आग) लगा दी। श्री रामचन्द्रजी के विरह की इस अग्नि को लोग सह न सके। सब लोग व्याकुल होकर भाग चले॥2॥

*** सबहिं बिचारु कीन्ह मन माहीं। राम लखन सिय बिनु सुखु नाहीं॥ जहाँ रामु तहँ सबुइ समाजू। बिनु रघुबीर अवध नहिं काजू॥3॥

भावार्थ:

सबने मन में विचार कर लिया कि श्री रामजी, लक्ष्मणजी और सीताजी के बिना सुख नहीं है। जहाँ श्री रामजी रहेंगे, वहीं सारा समाज रहेगा। श्री रामचन्द्रजी के बिना अयोध्या में हम लोगों का कुछ काम नहीं है॥3॥

*** चले साथ अस मंत्रु दृढ़ाई। सुर दुर्लभ सुख सदन बिहाई॥ राम चरन पंकज प्रिय जिन्हही। बिषय भोग बस करहिं कि तिन्हही॥4॥

भावार्थ:

ऐसा विचार दृढ़ करके देवताओं को भी दुर्लभ सुखों से पूर्ण घरों को छोड़कर सब श्री रामचन्द्रजी के साथ चले पड़े। जिनको श्री रामजी के चरणकमल प्यारे हैं, उन्हें क्या कभी विषय भोग वश में कर सकते हैं॥4॥

दोहा :

*** बालक बृद्ध बिहाइ गृहँ लगे लोग सब साथ। तमसा तीर निवासु किय प्रथम दिवस रघुनाथ॥84॥

भावार्थ:

बच्चों और बूढ़ों को घरों में छोड़कर सब लोग साथ हो लिए। पहले दिन श्री रघुनाथजी ने तमसा नदी के तीर पर निवास किया॥84॥

चौपाई :

*** रघुपति प्रजा प्रेमबस देखी। सदय हृदयँ दुखु भयउ बिसेषी॥ करुनामय रघुनाथ गोसाँई। बेगि पाइअहिं पीर पराई॥1॥

भावार्थ:

प्रजा को प्रेमवश देखकर श्री रघुनाथजी के दयालु हृदय में बड़ा दुःख हुआ। प्रभुश्री रघुनाथजी करुणामय हैं। पराई पीड़ा को वे तुरंत पा जाते हैं (अर्थात दूसरे का दुःख देखकर वे तुरंत स्वयं दुःखित हो जाते हैं)॥1॥

*** कहि सप्रेम मृदु बचन सुहाए। बहु बिधि राम लोग समुझाए॥ किए धरम उपदेस घनेरे। लोग प्रेम बस फिरहिं न फेरे॥2॥

भावार्थ:

प्रेमयुक्त कोमल और सुंदर वचन कहकर श्री रामजी ने बहुत प्रकार से लोगों को समझाया और बहुतेरे धर्म संबंधी उपदेश दिए, परन्तु प्रेमवश लोग लौटाए लौटते नहीं॥2॥

*** सीलु सनेहु छाड़ि नहिं जाई। असमंजस बस भे रघुराई॥ लोग सोग श्रम बस गए सोई। कछुक देवमायाँ मति मोई॥3॥

भावार्थ:

शील और स्नेह छोड़ा नहीं जाता। श्री रघुनाथजी असमंजस के अधीन हो गए (दुविधा में पड़ गए)। शोक और परिश्रम (थकावट) के मारे लोग सो गए और कुछ देवताओं की माया से भी उनकी बुद्धि मोहित हो गई॥3॥

*** जबहिं जाम जुग जामिनि बीती। राम सचिव सन कहेउ सप्रीती॥ खोज मारि रथु हाँकहु ताता। आन उपायँ बनिहि नहिं बाता॥4॥

भावार्थ:

जब दो पहर बीत गई, तब श्री रामचन्द्रजी ने प्रेमपूर्वक मंत्री सुमंत्र से कहा- हे तात! रथ के खोज मारकर (अर्थात पहियों के चिह्नों से दिशा का पता न चले इस प्रकार) रथ को हाँकिए। और किसी उपाय से बात नहीं बनेगी॥4॥

दोहा :

*** राम लखन सिय जान चढ़ि संभु चरन सिरु नाइ। सचिवँ चलायउ तुरत रथु इत उत खोज दुराइ॥85॥

भावार्थ:

शंकरजी के चरणों में सिर नवाकर श्री रामजी, लक्ष्मणजी और सीताजी रथ पर सवार हुए। मंत्री ने तुरंत ही रथ को इधर-उधर खोज छिपाकर चला दिया॥85॥

चौपाई :

*** जागे सकल लोग भएँ भोरू। गे रघुनाथ भयउ अति सोरू॥ रथ कर खोज कतहुँ नहिं पावहिं। राम राम कहि चहुँ दिसि धावहिं॥1॥

भावार्थ:

सबेरा होते ही सब लोग जागे, तो बड़ा शोर मचा कि रघुनाथजी चले गए। कहीं रथ का खोज नहीं पाते, सब 'हा राम! हा राम!' पुकारते हुए चारों ओर दौड़ रहे हैं॥1॥

*** मनहुँ बारिनिधि बूड़ जहाजू। भयउ बिकल बड़ बनिक समाजू॥ एकहि एक देहिं उपदेसू। तजे राम हम जानि कलेसू॥2॥

भावार्थ:

मानो समुद्र में जहाज डूब गया हो, जिससे व्यापारियों का समुदाय बहुत ही व्याकुलहो उठा हो। वे एक-दूसरे को उपदेश देते हैं कि श्री रामचन्द्रजी ने, हम लोगों को क्लेश होगा, यह जानकर छोड़ दिया है॥2॥

*** निंदहिं आपु सराहहिं मीना। धिग जीवनु रघुबीर बिहीना॥ जौं पै प्रिय बियोगु बिधि कीन्हा। तौ कस मरनु न मागें दीन्हा॥3॥

भावार्थ:

वे लोग अपनी निंदा करते हैं और मछलियों की सराहना करते हैं। (कहते हैं-) श्री रामचन्द्रजी के बिना हमारे जीने को धिक्कार है। विधाता ने यदि प्यारे का वियोग ही रचा, तो फिर उसने माँगने पर मृत्यु क्यों नहीं दी!॥3॥

*** एहि बिधि करत प्रलाप कलापा। आए अवध भरे परितापा॥ बिषम बियोगु न जाइ बखाना। अवधि आस सब राखहिं प्राना॥4॥

भावार्थ:

इस प्रकार बहुत से प्रलाप करते हुए वे संताप से भरे हुए अयोध्याजी में आए। उन लोगों के विषम वियोग की दशा का वर्णन नहीं किया जा सकता। (चौदह साल की) अवधि की आशा से ही वे प्राणों को रख रहे हैं॥4॥

दोहा :

*** राम दरस हित नेम ब्रत लगे करन नर नारि। मनहुँ कोक कोकी कमल दीन बिहीन तमारि॥86॥

भावार्थ:

(सब) स्त्री-पुरुष श्री रामचन्द्रजी के दर्शन के लिए नियम और व्रत करने लगे और ऐसे दुःखी हो गए जैसे चकवा, चकवी और कमल सूर्य के बिना दीन हो जाते हैं॥86॥

चौपाई :

*** सीता सचिव सहित दोउ भाई। सृंगबेरपुर पहुँचे जाई॥ उतरे राम देवसरि देखी। कीन्ह दंडवत हरषु बिसेषी॥1॥

भावार्थ:

सीताजी और मंत्री सहित दोनों भाई श्रृंगवेरपुर जा पहुँचे। वहाँ गंगाजी को देखकरश्री रामजी रथ से उतर पड़े और बड़े हर्ष के साथ उन्होंने दण्डवत की॥1॥

*** लखन सचिवँ सियँ किए प्रनामा। सबहि सहित सुखु पायउ रामा॥ गंग सकल मुद मंगल मूला। सब सुख करनि हरनि सब सूला॥2॥

भावार्थ:

लक्ष्मणजी, सुमंत्र और सीताजी ने भी प्रणाम किया। सबके साथ श्री रामचन्द्रजी ने सुख पाया। गंगाजी समस्त आनंद-मंगलों की मूल हैं। वे सब सुखों को करने वाली और सब पीड़ाओं को हरने

वाली हैं॥2॥

*** कहि कहि कोटिक कथा प्रसंगा। रामु बिलोकहिं गंग तरंगा॥ सचिवहि अनुजहि प्रियहि सुनाई। बिबुध नदी महिमा अधिकाई॥3॥

भावार्थ:

अनेक कथा प्रसंग कहते हुए श्री रामजी गंगाजी की तरंगों को देख रहे हैं। उन्होंने मंत्री को, छोटे भाई लक्ष्मणजी को और प्रिया सीताजी को देवनदी गंगाजी की बड़ी महिमा सुनाई॥3॥

*** मज्जनु कीन्ह पंथ श्रम गयऊ। सुचि जलु पिअत मुदित मन भयऊ॥ सुमिरत जाहि मिटइ श्रम भारू। तेहि श्रम यह लौकिक ब्यवहारू॥4॥

भावार्थ:

इसके बाद सबने स्नान किया, जिससे मार्ग का सारा श्रम (थकावट) दूर हो गया और पवित्र जल पीते ही मन प्रसन्न हो गया। जिनके स्मरण मात्र से (बार-बार जन्म ने और मरने का) महान श्रम मिट जाता है, उनको 'श्रम' होना- यह केवल लौकिक व्यवहार (नरलीला) है॥4॥

दोहा :

*** सुद्ध सच्चिदानंदमय कंद भानुकुल केतु। चरितकरत नर अनुहरत संसृति सागर सेतु॥87॥

भावार्थ:

शुद्ध (प्रकृतिजन्य त्रिगुणों से रहित, मायातीत दिव्य मंगलविग्रह) सच्चिदानंद-कन्द स्वरूप सूर्य कुल के ध्वजा रूप भगवान श्री रामचन्द्रजी मनुष्यों के सदृश ऐसे चरित्र करते हैं, जो संसार रूपी समुद्र के पार उतरने के लिए पुल के समान हैं॥87॥